अध्याय - 4

भावात्मक रहस्यवाद : महादेवी वर्मा एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ

अध्याय - 4

भावात्मक रहस्यवाद : महादेवी वर्मा एवं रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ

मनुष्य की क्रियाओं का संचालन भाव और बुद्धि से होता हैं। भाव का अर्थ संवेदना से है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने निबंध 'भाव और मनोविकार' में लिखते हैं - "मनुष्य की प्रवृतियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक रूप में पाये जाते हैं।"[1] अर्थात भावानुभूति के अभाव में कोई भी रचना काव्य नहीं हो सकता। भाव का संबंध ह्रदय से और बुद्धि का संबंध मस्तिष्क से होता है। काव्य के सामान्यतः चार मूल तत्त्व होते है - 1. भाव 2. भाषा 3. बुद्धि 4. शैली। किसी भी काव्य में भाव तत्त्व ही पाठक या श्रोता में रस बोध कराता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण संबंधों में जीता है। कभी-कभी यह संबंध ही व्यक्ति को अनुभूति की गहराई तक ले जाता है, जिसका थाह पाना कठिन हो जाता है। वहाँ भावना रहस्यमय बन जाता है। रवीन्द्रनाथ स्वयं स्वीकारते हैं - "मनुष्य सबसे अधिक दुर्गम अपने अंतराल में है।"[2] अतः हम कह सकते है कि मनुष्य के भाव का सटीक आकलन हर समय संभव नहीं है। प्रकृति की तरह वह अपनी अगोचरता में आकर्षक लगता है।

भावात्मक रहस्यवाद : महादेवी वर्मा की कविताएँ -

भावनात्मक रहस्यवाद का अर्थ होता है, रहस्यमई अलौकिक सत्ता के साथ विभिन्न प्रकार की भावनाएँ। इस स्थिति में विभिन भावों के मूल में विचार की ही प्रधानता होती है। महीयसी महादेवी और विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के काव्य की रहस्यात्मक अनुभूति में सत्य, शिव और सुन्दर की ही अभिव्यक्ति हुई हैं। सत्य वस्तु या भाव की वास्तविकता का, शिव सामाजिक उपयोगिता का एवं

सुन्दर उसके बाह्य एवं आतंरिक रूप के आकर्षण का बोध कराती है। अतः विचार, सत्य और दर्शन पर आधारित होते हुए भी महादेवी और रवीन्द्रनाथ की रहस्यवादी कविताएँ भावात्मकता से परिपूर्ण है। महादेवी का प्रणय किसी लौकिक व्यक्ति से नहीं बल्कि अलौकिक ब्रह्म के प्रति है। उनके प्रणय का आधार स्थूल रूप - सौन्दर्य न होकर सूक्ष्म अनुभूति और विश्वास हैं। शचीरानी गुर्टू के अनुसार - "व्यक्तिक सुख दुख की सीमा को पार कर जब आत्मा दुख वेदना के द्वारा भी सुख और हर्ष का अनुभव करने लगती है तभी .....भावात्मक रहस्यवाद का चरम उत्कर्ष काव्य में आता है। भावात्मक रहस्यवाद के चित्र प्रस्तुत करने वाले कवि में लौकिक सुख - दुःख को अलौकिक में भी लीन करने की क्षमता होना अनिवार्य है।[3] अर्थात महादेवी के काव्य में वेदना, करुणा और दुख की जो सघन अनुभूति है, वही उनके अधिकांश कविताओं के केंद्रीय भाव हैं। इन्हीं भावों का विवेचन - विश्लेषण अनुसंधान के दृष्टि से समीचीन है -

<u>वेदना भाव -</u> 'वेदना' शब्द की व्युत्पत्ति 'विद्' धातु दे हुई है। संस्कृत भाषा की इस विद् - धातु का अर्थ 'पीड़ा' या संताप से अलग प्रमुख रूप में 'ज्ञान' के अर्थ में भी होता है। विद् धातु में धञ्, ल्युट् और टाप् प्रत्यय लगा देने से वेदना शब्द बनता है -

"विद् - धञ् + ल्युट् + टाप् = वेदना"

अर्थात व्युत्पत्ति के अनुसार अंतर्जगत की किसी वृत्ति को जानना, समझना वेदना है, चाहे वह सुखात्मक हो या दुखात्मक। दुख और सुख दोनों ही वृत्तियों का जन्म स्थान मनुष्य की रागात्मक वृत्ति ही है। महादेवी वेदना या पीड़ा को प्रणय के अर्थ में ग्रहण करती हैं। साधारणतः वेदना को मधुर नहीं माना जाता, लेकिन प्रणय ऐसी भावानुभूति है जिसमें माधुर्य और अवसाद के साथ आनंद की भी अनुभूति होती है। विरह वेदना का आधार महादेवी में किसी प्रकार का आभाव नहीं बल्कि भाव ही है, जिसने कवयित्री के ह्रदय में स्नेह, संवेदना,

करुणा, साधना के भाव जगाने में समर्थ है। इस प्रकार यह भाव ही महादेवी में आत्म-विस्तार के उत्कर्ष का कारक है | डॉ. सम्पदा पाण्डेय के कथनानुसार, "भावना का वैभव महादेवी की रचनाओं में वेदना और रहस्य का विस्तार करता नजर आता है।"[4] यह वेदना ही महादेवी के विकार को जलाकर समाप्त कर देता है और साधिका समस्त विश्व के प्रति विनम्र तथा करुणापूर्ण हो उठती। इसी वेदना के माध्यम से साधिका अपने आराध्य तक पहुँचने में समर्थ है। यही उनकी सफलता का रहस्य हैं।

योग से वियोग की स्थिति में आने की मार्मिक वेदना महादेवी के अधिकांश काव्यों में व्यक्त हुआ हैं। उनके काव्य की मूल प्रेरणा ही वेदना रही है। वियोग की वेदना के लिए महादेवी के पास ग्लानि या निराशा का कोई स्थान नहीं है। इसी कारण इनमें किसी के प्रति व्यक्तिगत आक्रोश या निराशा नहीं बल्कि आतंरिक उल्लास का भाव दिखता है। महादेवी की वेदना मधुरमदिरा की धार के समान है, जिसके साथ साधिका एक अनोखे संसार में विचरण करती हैं –

" वेदना मधुमदिरा की धार
अनोखा एक नया संसार।"[5] (नीहार)

महादेवी साधना - पथ की चिर पथिक हैं। विरहानुभूति और आँसू ही उस पथ के साथी है। इस साधना पथ में असंख्य बाधाओं के बावजूद साधिका वेदना को मधु की तरह मीठा स्वीकार करती हैं। महादेवी अपने जीवन को विरह का जलजात कहती हैं, "विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात"। कमल कीचड़ में जन्म लेकर भी, कीचड़ से ऊपर उठकर खिलता है अर्थात कमल असद् से असद् वस्तु से भी उसके अन्दर विद्यमान सद् तत्त्व को ग्रहण कर अपने विकास का मार्ग प्रशस्त करता हुआ अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ता है। वृहदारण्यक उपनिषद में विद्यमान मंत्र - "तमसो मा ज्योतिर्गमय" अर्थात मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। महादेवी के वेदना इसी मंत्र की सनातन

पुकार है। वेदना के इसी रहस्य को प्राप्त कर महादेवी अंधकार से प्रकाश की ओर बढ़ती है और वहाँ पहुंचकर वह सुख दुख दोनों ही अवस्था में एक समान अनुभूति प्राप्त करती है। वेदना को अपनी धरोहर तथा आँसू को ही अपनी पूंजी के रूप में स्वीकार करती है। रहस्यवादी साधक सुख दुख दोनों परिस्थितियों में व्याकुल नहीं होता। वह अपने अराध्य पर अटूट विश्वास को बनाये रखकर अपनी साधना पथ पर दृढ़ता के साथ टिका रहता है -

"बिखरना वरदान हर,
विश्वास है निर्वाण मेरी
शून्य में झंझा - विकल,
विद्युत हुई पहचान मेरी।
वेदना पाई धरोहर,
अश्रु की निधि धर चली मैं।"[6] (दीपशिखा)

रहस्यवाद की मुख्य विशेषता ही जिज्ञासा है। रहस्यवादी साधिका महादेवी के ह्रदय में इस जिज्ञासा का उत्पन्न होना स्वभाविक हैं कि उन्होंने इस वेदना के मधुर क्रय में जिस बहुमूल्य वस्तु को पा लिया है। वह कौन हैं ? इसलिए वे स्वयं से ही पुछ रही हैं -

"पा लिया मैंने किसे इस
वेदना के मधुर क्रय में ?
कौन तुम मेरे ह्रदय में ?"[7] (नीरजा)

अपनी वेदनानुभूति को महादेवी ने यामा की भूमिका 'अपनी बात' में इस प्रकार व्याख्यायित किया हैं - "व्यक्तिगत सुख विश्ववेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है और व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व।"[8] बुद्ध की वाणी में विश्व मंगल की भावना है और वही भावना महादेवी की कविता का प्राण और वेदना का मूल उत्स है तथा असीम के प्रति

प्रेमपूर्ण समर्पण का भाव ही उनके काव्य में व्यक्त अलौकिक प्रेम है। जिसमें अपने अलौकिक प्रियतम से मिलने की इच्छा और न मिल पाने की कसक के साथ ही साथ अद्वैत भावना भी सन्निहित है। वेदना महादेवी की कविता का प्रारम्भ है। वे वेदना को प्राप्त कर सुखात्मक अनुभव करती है। वेदना जब व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा से जुड़ा होता है तो व्यक्ति में व्यक्तिगत ग्लानि का भाव आ जाता है लेकिन महादेवी की वेदना व्यक्तिगत नहीं अपितु व्यापक, विराट, संवेदनशील है जो उन्हें निरंतर अध्ययन, निरीक्षण तथा अनुभव से मिला हैं। वेदनानुभूति उनके काव्य में भाव - तत्त्व की आत्मा और उसी से उनका काव्य शिल्प प्रभावित है। महादेवी छायावादी काव्यांदोलन में वेदना भाव की साम्राज्ञी है। त्याग, तपस्या और साधना का मार्ग ही उनकी शक्तियाँ है। मानव जीवन में मंगल तभी हो सकता है जब हम त्यागपूर्ण जीवन अपनाएँ। महादेवी के सम्पूर्ण काव्य में त्याग और पूर्ण समर्पण का भाव निहित है| रहस्यवादी साधना में अलक्षित प्रियतम से अद्वैत की आकांक्षा में समर्पण भाव आवश्यक होता हैं| उदाहरण दृष्टव्य हैं -

" ऐसा तेरा लोक, वेदना
नहीं, नहीं जिसमें अवसाद
जलना जाना नहीं, नहीं
जिसने जाना मिटने का स्वाद।"[9] (नीहार)

महादेवी की वेदना अश्रुसिक्त है फिर भी उनमें कहीं भी अवसाद नहीं है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार - "महादेवी विराट विश्व में व्याप्त इस क्षणिक - उल्लास - वेदना की महिमा की गायिका है। जिसे दुनिया वेदना कहती है, वह एक अपूर्व उल्लास है। मिट - मिट कर बनने का उल्लास, झर - झर कर पूर्ण होने का आनंद, जल जलकर आलोकित होने की व्याकुल लालसा।"[10] महादेवी की वेदना परलौकिक प्रिय के कारण है परन्तु उस वेदना का स्वरुप लौकिक दिखाई पड़ता है।

<u>दुःखवाद -</u> महादेवी दुख को अपने जीवन की साधना का अंतिम परिणति स्वीकारती हुई, उसके साथ चिर स्थायी संबंध स्थापित कर लेती हैं। महादेवी को दुख इतना पसंद क्यों है ? इस प्रश्न का उत्तर महादेवी स्वयं यामा की भूमिका 'अपनी बात' में रखती हैं - " दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सकें, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, अधिक उर्वर बनाये बिना नहीं गिर सकता। मनुष्य सुख को अकेला भोगना चाहता है, परन्तु दुःख सब को बाँट कर - विश्व जीवन में अपने जीवन को, विश्व - वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल बिंदु समुद्र में मिल जाता है। कवि का मोक्ष है। मुझे दुःख के दोनों ही रूप प्रिय हैं। एक वह जो मनुष्य के संवेदनशील हृदय को सारे संसार से एक अविच्छन बँधन में बाँध देता है और दूसरा वह जो काल और सीमा के बंधन में पड़े हुए असीम चेतन का क्रंदन है।"[11] महादेवी की यह उक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सही है। दुख व्यक्ति को व्यक्ति से जोड़ता है, वह उसे संवेदनशील और उदात्त बनाता है वहीं सुख व्यक्ति को संकीर्ण बना देता है -

" दुःख में जाग उठा अपनेपन का सोता संसार ;
सुख में सोई री प्रिय - सुधि की अस्फुट सी झंकार ;
हो गए सुख दुख एक समान।"[12] (नीरजा)

महादेवी दुख को तीन कारणों से महत्वपूर्ण मानती हैं - 1. दुख मनुष्य के हृदय का परिष्कार करता है। 2. दुख प्रियजनों को अत्यधिक निकट ला देता है। 3. दुख अलौकिक प्रिय (असीम सत्ता) से एकाकार का मार्ग प्रशस्त करता है।

महादेवी बौद्ध साहित्य का ऋण अपने ऊपर स्वीकार करते हुए कहती हैं - "बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनके संसार को दुःखात्मक समझने वाले दर्शन से मेरा असमय ही

परिचय हो गया था।"[13] दुःख महादेवी को इसलिए प्रिय है क्योंकि दुख उन्हें संवेदनशील बनाकर दुखी प्राणियों के दुख से जोड़ता है। अपने अलौकिक प्रियतम के प्रति पूजा अर्चना का भाव रखना, प्रियतम के वियोग में बने रहने की कामना करना और प्रियतम के लिए त्याग और समर्पण का दृढ संकल्प, यह सब महादेवी की सामाजिक चेतना और विश्व वेदना का दार्शनिक रूप है। महादेवी का दुख व्यक्तिगत दुख नहीं था उनकी वेदना विश्व वेदना थी। जिसे महादेवी ने रहस्यात्मक आवरण में लपेटकर रहस्यमय बना दिया हैं। उनकी दुख संबंधी रहस्यवादी कविताओं में लोकमंगल की कामना के साथ, आशा और उत्साह की झलक दिखाई पड़ता हैं। महादेवी ने अपनी पीड़ा को जिस उच्चभूमि पर प्रतिष्ठित किया है, उसमें कहीं भी खीझ और क्रंदन नहीं है बल्कि महादेवी दुख में ही चिर सुख को तलाशती है। उसमें असीम अभिलाषा, आत्म - विश्वास और अपने अलौकिक प्रियतम के लिए निश्छल प्रेम का भाव ही समाहित है। महादेवी का दुःखवाद लोकमंगल की दृढ आधार शिला पर अटल है, तभी तो वह कहती हैं -

" चिर ध्येय यही जलने का
ठंडी विभूति बन जाना
है पीड़ा की सीमा यह
दुख का चिर सुख हो जाना।"[14] (रश्मि)

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से साधक का अपने अराध्य की प्राप्ति में दुख ही श्रेयस्कर है| महादेवी रहस्यवादी साधिका हैं, इसलिए इस दुखानुभूति का महत्त्व उनके लिये और भी अधिक था। अलौकिक प्रियतम, रहस्यवादी साधना एवं आत्म - चिंतन से उन्हें यह बोध हुआ कि दुख ही जीवन का सार है। इस प्रकार महादेवी दुख को अपने जीवन की साधना का चरम लक्ष्य स्वीकारते हुए उसके साथ स्थायी संबंध स्थापित कर लेती हैं तब दुख उनके लिए साधन से साध्य बन जाता हैं। इस स्थिति में पहुंचकर साधिका दुख और सुख का अन्तर भूल जाती है। उन्हें दुख ही सुखमय और सुख ही दुखमय प्रतीत होने लगता है।

भारतीय दर्शन में भागवतगीता के द्वितीय अध्याय में यह कहा गया है कि - **"दुःखेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।।56।।"**[15] स्थितप्रज्ञ व्यक्ति अर्थात जिसके ह्रदय में अपने अराध्य के लिए अनंत प्रेम हो वह दुख और सुख दोनों ही स्थिति में सदा सम रहता है। इस दर्शन के आधार पर रहस्यवादी साधिका महादेवी अपने अलौकिक प्रियतम की अनुभूति को विरह रूपी दुख में ही प्राप्त करती हैं और सुख-दुख दोनों ही स्थिति में सम भाव को अनुभव करती हैं | महादेवी कहती हैं -

"विरह का युग आज दिखा,
मिलन के लघु पल सरीखा;
दुःख सुख में कौन तीखा,
मैं न जानी औ' न सीखा।"[16] **(सांध्यगीत)**

इस प्रकार रहस्यवादी साधिका चिर व्यथा को ही अपने जीवन का अमूल्य पूंजी स्वीकार कर लेती हैं| महादेवी पीड़ा के बीच ही अपने अलौकिक प्रियतम की उपस्थिति को देखती हैं -

" पर शेष नहीं होगी यह
यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढा
तुम में ढूँढूँगी पीड़ा।"[17] **(नीहार)**

महादेवी वर्मा के रहस्यवाद में दुःखवाद का प्रमुख स्थान है। जिस तरह से आत्मा - परमात्मा की अभिन्नता (अद्वैत की स्थिति), साधना पथ की सूक्ष्मता और आत्मनिवेदन की अभिव्यक्ति महादेवी के गीतों में प्रकट हुई हैं, उस तरह से दुखवाद भी उनके गीतों का प्रमुख विषय है। महादेवी का यह दुखवाद उनके ह्रदय के क्रमिक विस्तार का ही प्रतिफलन दिखलाई पड़ता हैं । वे स्वयं कहती हैं - "पहले बाहर खिलने वाले फूल को देखकर मेरे रोम - रोम में ऐसा

पुलक दौड़ जाता था मानो वह मेरे ही ह्रदय में खिला हो; परन्तु उसके अपने से भिन्न प्रत्यक्ष अनुभव में एक अव्यक्त वेदना भी थी। फिर वह सुख दुख मिश्रित अनुभूति ही चिंतन का विषय बनने लगी अब अंत में मेरे मन ने न जाने कैसे उस बाहर - भीतर में एक सामञ्जस्य सा ढूँढ लिया है। जिसने सुख - दुःख को इस प्रकार बुन लिया कि एक के प्रत्यक्ष अनुभव के साथ दूसरे का अप्रत्यक्ष आभास मिलता रहता है।"[18] महादेवी के गीतों में क्रंदन और रुदन में जो समानता दिखाई पड़ता हैं, उसका कारण उनका आध्यात्मिक प्रेम और रहस्यवादी दृष्टिकोण है।

<u>करुणा भाव -</u> महादेवी की समस्त रचनाओं का बीज भाव करुणा ही है। परिवारिक पृष्ठभूमि के कारण महादेवी का ह्रदय अति कोमल हो गया था। इसके अतिरिक्त बौद्धों की महाकरुणा का भी उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'करुणा का सन्देश वाहक' निबंध में महादेवी कहती हैं - "बुद्ध के व्यक्तिव में दो विशेषताएँ ऐसी हैं जिनका संयोग सहज नहीं - कठोर बुद्धिवाद और कोमल मानवीय तत्त्व।"[19] महादेवी के व्यक्तित्व में दूसरी विशेषता का प्रभाव अधिक था। महादेवी के ह्रदय की करुणा उनके काव्य जगत में व्याप्त है। उनकी रहस्यवादी कविताओं में करुणा के दो रूप दिखाई पड़ते है - 1. आनंदात्मक 2. लोकमंगल की भावना के साथ प्रभावी रूप में उभरकर आया है।

महादेवी का आत्मविश्वास आंसुओं में न डूबकर, अश्रु से ही अपना श्रृंगार करती है। करुणा ही उनको प्रिय तक पहुँचाने का साधन हैं। इस व्यथा के भार में भी रहस्यवादी साधिका आनंद को ही अनुभव करती हैं। भारतीय दर्शन के छान्दोग्योपनिषद में कहा गया है, " **यो वै भूमा तत् सुखं, नाल्पे सुखमस्ति**" अर्थात भूमा तत्व में यानि असीम, व्यापकता, विराटता में ही सुख है। सीमा में सुख नहीं है। अतः भूमा सीमित सुख को अस्वीकार करता है। सीमा ही दुख का मूल है। संसार के मूल रहस्य जीवन-मृत्यु, सुख-दुख को समान अनुभव करके

दोनों में एकरस आनंद अनुभव करना भूमा है। इसी प्रकार उस रहस्यमयी भूमा (असीम) की ओर अग्रसर हुआ जा सकता है। महादेवी को करुणा का जो पारावार मिला है, वह सुख दुख के पार है। अर्थात महादेवी की अलौकिक विरहानुभूति लौकिक सुख दुख से परे है -

" क्यों अश्रु न हो श्रृंगार मुझे।
मेरी मृदु पलके मूंद - मूंद,
छलका आँसू की बूंद - बूंद '
लघुतम कलियों में नाप प्राण '
सौरभ पर मेरे तोल गान,
बिन मांगे तुमने दे डाला
करुणा का पारावार मुझे
चिर - सुख - दुख के दो पार मुझे।"[20] (दीपशिखा)

दीपक उनकी साधना का निष्कंप साथी है। वह स्वयं जलकर ज्योति फैला रही है। महादेवी अपनी व्यथा को चिर व्यथा कहती हैं। दीपक का जलना, शलभ का आलोक के लिए मर मिटना, इस जग को सृजनशील बनाने के लिए बादलों का बरसना आदि विभिन्न दृष्टान्तो के द्वारा महादेवी ने निष्काम कर्म योग का सन्देश दिया हैं और माया के बीच परमात्मा की प्राप्ति का आग्रह भी है। यह उनकी आध्यात्मिक दर्शन की भाव भूमि हैं -

" मैं नीर भरी दुख की बदली
विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।"[21] (सांध्यगीत)

यही उनकी कामना है कि विस्तृत नभ से वे अपने लिए कुछ भी नहीं चाहती। यह उनकी लोकमंगल की साधना है। जिस प्रकार बीज मिट्टी में दबकर या मिटकर सृजनशील होती है। इसलिए महादेवी अपने करुणा के उपहार के साथ स्वयं भी अपने मिट जाने के अधिकार को सुरक्षित रखना चाहती हैं -

"क्या अमरों का लोक मिलेगा
तेरी करुणा का उपहार ?
रहने दो हे देव ! अरे
यह मेरा मिटने का अधिकार।"[22] (नीहार)

रहस्यवाद किसी धार्मिक अनुष्ठान की प्रणाली नहीं है, बल्कि वह आध्यात्मिक धरातल पर जीने और परम सत्ता से तादात्म्य स्थापित कर उसमें मिल जाने की अनुभूति का क्षेत्र है। यह अनुभूति अनंत प्रेम और उसकी तीव्रता की अपेक्षा करती है, ऐसा प्रेम जिसमें स्व एवं पर का भेद मिट जाता है। जो प्रकृति के कण - कण में अनंत सत्ता का दर्शन करता है और जो स्वार्थ की अपेक्षा त्याग, लोकमंगल के भाव को अधिक महत्त्व देता है। बौद्ध दर्शन से करुणा के साथ ही महादेवी ने सर्वकल्याण का सन्देश भी ग्रहण किया। अतः उनके रहस्यवादी कविताओं में करुणा सबसे अधिक सबल लोक - मंगल - विधायक भाव है।

<u>महादेवी के भावात्मक रहस्यवादी कविताओं में लोक - कल्याण की भावना -</u>

महादेवी की कविता यात्रा में आत्म-चेतना और रहस्यवादी भावना के साथ - साथ लोक - चेतना भी समाहित हैं। महदेवी को सिर्फ अंतर्मुखी तथा एकांत साधना की पथिक नहीं कहा जा सकता। उन्होंने स्वयं स्वीकारा हैं - "जीवन की दृष्टि से मैं बहुबंधी हूँ, अतः एकांत काव्य साधना का प्रश्न उठाना ही

व्यर्थ होता। साधारणतः मुझे भाव-विचार और कर्म का सौन्दर्य समान रूप से आकर्षित करता है, इसी से किसी एक में जीवन की पूर्णता पा लेना मेरे लिए सहज नहीं। भाव और विचारगत की सब सीमाएँ न छू सकने पर भी मेरे कर्मक्षेत्र की विविधता कम सारवती नहीं।"[23] अर्थात रहस्यवादी साधिका महादेवी ने अपने सुख दुख से निर्मित लोक जीवन को विस्मृत नहीं किया बल्कि अपनी पीड़ा की नीव पर लोक - कल्याण का भवन निर्मित किया।

अपने साधना पथ में निमग्न महादेवी, जिस व्यक्तिगत साधना की बात कहती हैं। उसके रहस्य को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जब वे कहती हैं - " दीप मेरे जल अकम्पित, घुल अचंचल।" अर्थात पूरे समाज के सामने दीप के रूप में, एक उदाहरण प्रस्तुत करती है की अपने साधना पथ पर दीप की तरह दृढ संकल्प के साथ चलते रहो। रहस्यवादी साधक को अपने अराध्य के प्रति अटूट विश्वास होना चाहिए। ऐसा लगता है कि, महादेवी पूर्ण आस्था के साथ अपनी साधना में स्वयं के साथ समस्त संसार को आगे बढ़ते रहने की प्रेरणा दे रहीं हैं। वे स्वयं कहती हैं-

" अचल हिमगिरी के ह्रदय में आज चाहे कंप हो ले,
या प्रलय के आंसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले ;
आज पी आलोक के डोले तिमिर की घोर छाया,
जागकर विद्युत् - शिखाओं में निठुर तूफान बोले !
पर तुझे है नाश - पथ पर चिन्ह अपने छोड़ आना !
जाग तुझ को दूर जाना !"[24] (सांध्यगीत)

वे समस्त बाधाओं का सामना करती हुई अपने सजग व्यक्तित्व को दृढ़ता के साथ निर्दिष्ट लक्ष्य तक पहुँचने का सन्देश देती हैं। बच्चन सिंह के अनुसार - "यह उद्बोधन है या संकल्प ? भावना है या आस्था ? विनाश है या निर्माण ? जो कुछ भी हो, इससे तूफान से खेलने की एक प्रेरणा मिलती है।"[25]

सभी दीपों के बुझ जाने के बावजूद भी निराशा रूपी अंधकार से लड़ने के लिए एकाकी दीप का जलना और विपरीत परिस्थितियों में भी दृढ संकल्प के साथ चलते रहना, लघु मानव को विराट से जोड़ने की प्रक्रिया है। महादेवी की रचनाओं में ऐसे अनुभूतिमय चित्र उपस्थित होते है, जो नियतिवाद और निराशा के विपरीत आत्मविश्वास तथा साहसिकता के उदाहरण बन सके।

महादेवी ने अपने को 'नीर भरी दुख की बदली' कहा हैं। स्पंदनों में चिर निस्पंदन बसा हुआ है। कवयित्री का विरह भी संगीत से भरा है। वह कण - कण पर बरस कर नये जीवन का अंकुर बनकर निकलेगा। अर्थात महादेवी की वेदना भी लोकोपकारिणी है -

"मैं नीर भरी दुख की बदली !

x x x

रज - कण पर जल - कण हो बरसी !
नव जीवन - अंकुर बन निकली !"[26] (सांध्यगीत)

अतः महादेवी के दीपक का दृढ़ता के साथ जलते रहना, शलभ का आलोक के लिए मर मिटना, फूल का सौरभदान करना, बादलों का बरसकर नव सृजन करना, बिना थके सजग रहकर अपने साधना पथ पर चलते रहना, आदि के माध्यम से निष्काम कर्म - योग का सन्देश दिया हैं। जो इस संसार में रहते हुए परमात्म - प्राप्ति का मार्ग है। इसी मार्ग पर चलकर महादेवी अपने अलौकिक प्रियतम को प्राप्त कर सकती हैं। यही उनकी रहस्य साधना का आधार भी | कंटकों की सेज पर सोकर, आंसुओं का ताज पहनकर भी हंसी मुस्कान बिखेरना, उस फूल के समान ही कहा जा सकता है, जो काँटों की सेज पर भी अपनी आभा बिखेरता रहता है। महादेवी ने अपनी साधना यात्रा में लोकमंगल की व्यापक पृष्टभूमि रहस्यात्मक भावों के द्वारा खड़ा किया ।

<u>भावात्मक रहस्यवाद : रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताएँ –</u>

आधुनिक भारतीय साहित्य में सर्वाधिक सौन्दर्य प्रेमी रवीन्द्रनाथ ठाकुर के लिए ईश्वर प्रेम मानो प्रभु की इच्छा का अनुपालन है। इनकी सौन्दर्यान्वेषी दृष्टि ने जीव-जगत के सर्वोत्तम मनोभाव 'प्रेम' के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन किया और साथ ही इसके भावात्मक स्वरूप की व्यापकता को दर्शाते हैं| इसे अपनी सम्पूर्ण साहित्य-साधना का अभिन्न अंग बनाया। सत्य और प्रेम के पुजारी के रूप में कवि रवीन्द्र आध्यात्मिक प्रेम की ऊँचाइयों पर चढ़ जाते हैं। 'गीतांजलि' के गीतों पर अभूतपूर्व तरीके से अपने भाव प्रकट करते हुए यीट्स लिखते हैं - ''रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'गीतांजलि' में ईश्वर और मानव के भिन्न-भिन्न संबंधों को सुंदरता के साथ व्यक्त किया है। वास्तव में यह भारतीय सांस्कृतिक प्रेम की कविता है।''[27] अतः प्रेम के इस भावात्मक-सौन्दर्य से जुड़कर कवि रवीन्द्र ने विपुल काव्यों का सृजन किया है।

प्रेम एक ऐसा सहज मनोभाव है जिसकी उत्पत्ति आत्म-साक्षात्कार की सघन भाव-भूमि से होती है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने काव्य के स्वरूप को अन्तःकरण की वृत्तियों के चित्र रूप में स्वीकृत किया है, जो पाठक के मन पर आनन्ददायी प्रभाव डालती है। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' शीर्षक निबंध में काव्य के सौन्दर्य पक्ष पर विचार करते हुए कहा है कि, ''हृदय पर नित्य प्रभाव रखने वाले रूपों और व्यापारों की भावना को सामने लाकर कविता बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्तःप्रकृति का सामंजस्य घटित करती हुई उसके भावात्मक सत्ता के प्रकार का प्रसार करती है।''[28] इनकी दृष्टि में कविता जीवन और जगत की भावात्मक अभिव्यक्ति है। कवि रवीन्द्र रहस्यवादी साधक है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण से इन्होंने अपने काव्य में भावना के व्यापक सौन्दर्य को विकसित किया और विविध रूपों में प्रकट किया। इन्होंने रहस्यात्मक रंग में रंगकर प्रियतम और प्रेयसी के रूप में प्रेम के संयोग और वियोग के भावों का भावात्मक अंकन किया है –

प्रेम का संयोगात्मक भाव –

रवीन्द्रनाथ का अध्यात्म प्रेम ऊँचे दर्जे का दृष्टिगत होता है। रवीन्द्र जीवात्मा रूपी दुल्हन को परमात्मा रूपी दुल्हे से साहचर भाव के लिए, युगों-युगों से प्रतिक्षारत है। दाम्पत्य भाव की उनकी यह उपासना और उनकी भावनाएँ परमात्मा में लीन होना चाहता है। यही आध्यात्मिक प्रेम का आनंद है। 'गीतिमाल्य' के गीत संख्या 52 में इस उदाहरण को देखा जा सकता है –

''मिलन-आशा की तरी
अनादि काल से बहती चलती है।
वरण – डलिया में
अनेक काल के कुसुम भर जाते हैं
तुम्हारा हमारा मिलन होगा
इसलिए युगों-युगों से इस विश्वभुवन में
मेरे प्राण चिरस्वयंवरा हो कर वधु के
वेश में चलते हैं।''[29]

यहाँ कवि रवीन्द्र युगों-युगों से वधु वेश में अपने परमात्मा के मिलन के लिए प्रतीक्षारत दिखलाई पड़ते हैं। कवि के हृदय में अपने अराध्य के लिए जिज्ञासा का भाव व्यक्त हुआ है। वे इस रहस्य को जान लेना चाहते हैं कि परमात्मा रूपी प्रिय ने क्या देखकर उन्हें वधु रूप में ग्रहण किया है। 'चित्रा' काव्य संग्रह से 'जीवन देवता' कविता में इस भाव का अंकन हुआ है –

''आपनि वारिया लयेछिले मोरे ना जानि किसेर आशे।
लेगेछे कि भालो, हे जीवननाथ,
आमार रजनी, आमार प्रभात –
आमार नर्म, आमार क्रम तोमार विजन वासे?''[30]

अर्थात् कवि रवीन्द्र अपने अराध्य से अद्वैतभाव की अनुभूति को अनुभव कर रहे हैं। रहस्यवादी साधक जड़-चेतन में उसी असीम की अनुभूति को स्वीकारता है। अतः वे अपने अराध्य से जानना चाहते हैं कि मेरे अन्दर यह जो रजनी, प्रभात, क्रीड़ा, कौतुक का वास है। यह तो तुम्हारे ही विजन में वास करता है। क्या इससे खुश होकर तुमने मेरा वरण किया है।

रवीन्द्र ने संयोग भाव के अंतर्गत कई काव्यों की रचना की हैं। जिनमें क्षणिक मिलन , नारी उक्ति, पुरुषेर उक्ति, व्यक्त प्रेम, गुप्त प्रेम (मानसी), मानस सुन्दरी (सोनारतरी), रात्रे ओ प्रभाते , जीवन देवता (चित्रा), बालिका वधु (खेया), गीतांजलि, गीतिमाल्य और गीतालि काव्य संग्रह के कई गीतों में आध्यात्मिक प्रेम के संयोग पक्ष का चित्रण दृष्टिगत होता है।

चित्रा काव्य संग्रह के 'रात्रे ओ प्रभाते' कविता में प्रेमी और प्रेमिका के मिलन को रवीन्द्र आध्यात्मिकता की ओर ले जाते दिखाई पड़ते हैं। वे कहते हैं, प्राणेश्वरी रात को तो तुम प्रेयसी का रूप धारण कर आई थी। प्रभात होते ही किस क्षण हँसकर देवी के वेश में उदित हो गई। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''राते प्रेयसी रूप धरि
तुमि ऐसेछ प्राणेश्वरी
प्राते कखन देवीर वेशे
तुमि सम्मुखे उदिले हेसे।''[31]

अर्थात् कवि रवीन्द्र अपने आनंद के क्षण में भी उस असीम को खोजते हैं। यह रहस्यवादी साधक का वैशिष्ट्य है। 'अनंत की साधना' नामक निबंध में रवीन्द्रनाथ स्वयं कहते हैं कि, ''उपनिषद् का यह प्रवचन सत्य ही है कि मन ब्रह्म को नहीं पा सकता, वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता, केवल हमारी आत्मा प्रेम और आनंद से उसे पा सकती है। ब्रह्म के साथ पूर्ण एकात्मता

बनाकर ही आत्मा उसे पा सकती है। यही आध्यात्मिकता का मार्ग है। इस आत्मिक मिलन में ही ब्रह्म के सच्चे ज्ञान का रूप छिया है।''[32]

कवि रवीन्द्र जब अपने अराध्य के साथ एकात्म भाव का बोध करते हैं। वे कहते हैं, मेरे चित्त में तुम्हारी यह सृष्टि एक विचित्र वाणी की रचना कर रही है। उसी के साथ हे प्रभु तुम्हारी प्रीति मिलकर मेरे सकल गीतों को जगा रही हैं। यह रहस्य साधना की अंतिम अवस्था है। जब साधक उस असीम के साथ अद्वैतभाव को अनुभव करता हैं। 'गीतांजलि' के गीत संख्या 101 में इस उदाहरण को देखा जा सकता हैं –

''आमार चित्त तोमार सृष्टिखानि
रचिया तुलेछे विचित्र एक वाणी।
तारि साथे प्रभु मिलिया तोमार प्रीति
जागाए तुलिछे आमार सकल गीति।''[33]

कवि का प्रेम आध्यात्मिक भाव भूमि पर आधारित है। प्रेम अत्यंत पवित्र और दैवीय वृत्ति है। रहस्यवादी साधना में प्रेम का संयोग वर्णन कम देखने को मिलता है। किन्तु रवीन्द्रनाथ के आध्यात्मिक प्रेम में प्रभु मिलन या प्रेम के संयोग पक्ष का वर्णन भी विभिन्न रूपों में दिखलाई पड़ता है।

<u>प्रेम का वियोगात्म भाव –</u>

रवीन्द्रनाथ की आध्यात्मिक चेतना का मार्ग अनुभूति का मार्ग है। उनका असीम अखण्ड, अगम, अगोचर वर्णानातीत और सर्वव्यापक है। उसके स्वरूप को किसी निश्चित धारणा या आकृति में आबद्ध नहीं किया जा सकता। उसके स्वरूप को समझ पाने में वेद-वेदांत भी निष्फल है। इस असीम प्रियतम से जब विरह का भाव साधक के हृदय में प्रकट होता है। तब ऐसा आभास होता है जैसे -

सारी पृथ्वी कितने गंभीर दुःख में डुबी हुई है। सोनार तरी काव्य संग्रह के 'जाने नहीं दूँगी' कविता में यह भाव दृष्टिगत होता है। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''सारा आकाश, सारी पृथ्वी
कितने गंभीर दुःख में डुबी हुई है।
जितनी भू दूर चलता हूँ।
केवल यहीं मर्मांतक सुर सुनाई दे रहा है,
'मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी।' ''[34]

कवि रवीन्द्र ने यह कहना चाहते हैं कि, यह आकाश और समस्त धरा असीम दुःख में निमग्न हैं। चाहे मैं जितनी दूर भी चला जाऊँ चतुर्दिक यही मर्मान्तक ध्वनि सुनाई पड़ती है - ''मैं तुम्हें जाने नहीं दूँगी'' रहस्यसाधना में साधक का अपने अराध्य के प्रति आस्था का भाव जागृत होने पर वह उस विराट के स्वरूप में अद्वैतभाव की इच्छा रखता है। साधक अपने असीम प्रियतम को छोड़ना नहीं चाहता।

दुःख कवि रवीन्द्र के जीवन का साहस है। उनकी कमजोरी नहीं। वे अपने अराध्य से विपत्ति में रक्षा करने की इच्छा नहीं रखते बल्कि दुःख को पराजय करना चाहते और इसे सहनकर जयी हो जाना चाहते हैं। अर्थात् रवीन्द्र के दुःखानुभूति के अंतर्गत सामाजिक चेतना और दार्शनिक रूप है। वे व्यापक समाज को दुःख से हार जाने की अपेक्षा उसे परास्त करने का संकेत कर्म करते रहने के माध्यम से देना चाहते हैं। रहस्यवादी साधना में साधक दुःख में भी सुख की अनुभूति को प्राप्त करता है। अतः रवीन्द्रनाथ अपने अराध्य से दुःख से मुक्ति की आकांक्षा नहीं करते बल्कि उससे लड़ने का साहस पाना चाहते हैं ताकि वे उस पर विजय प्राप्त कर सके। 'गीतांजलि' काव्य संग्रह के गीत संख्या 4 में कवि रवीन्द्र के इस भाव को देखा जा सकता है –

''विपदे मोर रक्षा करो,

ए नहे मोर प्रार्थना,

विपदे आमि ना जेन करि जय

दुःखतापे व्यथित चित्ते

नाहे-वा दिले सांत्वना,

दुःखे जेनो करिते पारि जय

X X X

तोमारे जेन ना करि संशय''[35]

कवि रवीन्द्र दुःख की स्थिति में भी अपने अराध्य पर संश्य नहीं करते हैं। रहस्यवादी साधक का यह प्रमुख वैशिष्ट्य होता है कि वह हर परिस्थिति में अपने अराध्य के प्रति आस्था को दृढ़ रखता हैं।

कवि रवीन्द्र जीवन के समस्त दु-ख को भुलकर सुख में अर्थात् अराध्य के सुर में अपने सकल दुःख को विलय कर सुख में बदल देना चाहते हैं। रहस्यवादी साधक दुःख और सुख दोनों ही स्थिति में एक समान अनुभव करते हैं। 'गीतालि' काव्य संग्रह के गीत संख्या 17 से उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''जखन तुमि बाँधछिले तार

से जे बिषम व्यथा।

आज बाजाओ वीणा, भुलाओ भुलाओ

सकल दुःखेर कथा।''[36]

कवि रवीन्द्र आध्यात्म साधना में दुःख के महत्व को समझते हैं। उनका कहना है कि, दुःख में ही ईश्वर को पाया जा सकता। उन्होंने अपने दु-ख के समय में प्राण भरकर ईश्वर को पाया है। सामाजिक चेतना को जगाने का काम भी रवीन्द्र करते दिख रहे हैं। जैसे – सोना पिघलकर, हीरा घिसकर और

पत्थर असंख्य प्रहार सहकर अपनी मूल्यवत्ता को प्राप्त करता है, ठीक वैसे ही दुःख से व्यथित मनुष्य भी कर्म रूपी संघर्ष में तपकर ही ईश्वर या मनोवांछित वस्तु का लाभ कर सकता है। रहस्यवादी साधक भी विरह के दुःख में तपकर ही अपने अलौकिक प्रियतम को प्राप्त कर सकता है। 'गीतालि' काव्य संग्रह में गीत संख्या 97 में इस भाव को देखा जा सकता हैं –

''सूखेर माजे तोमाय देखेछि

दूःखेर तोमार पेयेछि प्राण भरे।''[37]

कवि रवीन्द्र अपने असीम से विरह की अनुभूति में, उन्हें नाना सूर में ढूँढते हैं। वे कहते हैं मैंने अपने ईश्वर को अपने ही घर में अकेला रखकर न जाने कहाँ बाहर ढूँडता हूँ। रवीन्द्र पर कबीर की रहस्यसाधन का प्रभाव स्पष्ट है। 'गीतिमाल्य' काव्य संग्रह के गीत संख्या 82 में इस भाव को देखा जा सकता है –

''हे अन्तरेर धन

तुमि जे विरही, तोमार शून ए भवन।

आमार घरे तोमाए आमि

एका रेखे दिलाम स्वामी,

कोथाए जे बाहिरे आमि

घूरि सकल खन।''[38]

अर्थात् वह असीम जो मेरे हृदय के कोने में छिपा हुआ है। उसे छोड़कर मैं न जाने कहाँ बाहर घूमता रहता हूँ। रवीन्द्रनाथ अपने निबंध 'छोटा

और बड़ा' में कहा हैं कि, ''मनुष्य अपनी संपूर्ण सत्ता में अपने से बड़े का अनुभव करता रहता है। इस वजह से बाउलों के उस दल ने कहा है :

खाँचार मध्ये अचिन पाखि
केमने आसे जाय।

.....अपनी सारी सीमा से अतीत सीमा से परे उस अचीन्हे का अनुभव क्षण-क्षण में कर रहा हूँ। उस असीम को अपना बनाने के लिये प्राणों की यह व्याकुलता है।''[39]

कवि रवीन्द्र में आध्यात्मिक भावनाओं की तीव्रता इतनी सघन है कि उनमें रहस्यवादी साधक के सभी वैशिष्ट्य समाहित हो जाते हैं। उनके भावनाओं में कहीं विरहिणी के अश्रु, कहीं असीम आनंद की वंदना है तो कहीं व्याकुल प्रतीक्षा दुःख और संघर्ष में सेवा और कर्म की मंगलमय भावना है।

रवीन्द्रनाथ के भावात्मक रहस्यवादी काव्य में लोक-कल्याण की भावना –

रवीन्द्रनाथ ठाकुर स्वभावतः मानवतावादी थे आध्यात्मिक चेतना के प्रभाववश उनके जीवन और साहित्य में अत्यन्त व्यापकता, सहिष्णुता और अद्भुत सहानुभूति है। उनकी रहस्यात्मक अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति तर्क पर आधारित नहीं बल्कि भावनाओं पर, श्रद्धा पर आधारित है। उनकी भावात्मक रहस्यवादी कविताओं मैं किसी प्रकार का वाद-विवाद न होकर केवल मानव प्रेम की भावना ही प्रमुख है। उनका आध्यात्मिक दृष्टिकोण भारतीय अद्वैतभाव , सर्वात्मवाद की पृष्ठभूमि पर मानवतावाद को विश्व स्तर पर प्रतिष्ठित करता है। 'वसुधैव कुटम्बकम्' एवं विश्व-बंधुत्व के महान स्वर को लेकर इन्होंने मानव के यतार्थ जीवंत स्वरूप की वंदना की है। प्रेम, सहयोग, सेवा, करूणा आदि उदात्त तत्वों को संजोकर इन्होंने अपने आध्यात्मिक-मूल्यों से जीवन को सार्थक

बनाया है। विश्वनाथ प्रसाद वर्मा के अनुसार, ''कवि तथा शिष्ट साहित्य के पंडित होने के नाते वे संकीर्ण विभाजक रेखाओं के प्रति उदासीन थे और उन्होंने एक संपूर्ण मानवता को अव्यवी समग्र मानकर उसी पर अपना ध्यान केंद्रित किया। उन्होंने संगठित मानव को एकता और सामंजस्य का संदेश दिया और विलाप, करुणा, दुःख, अपव्यय तथा एकाकीपन के उस पार शांति तथा प्रेम का दर्शन किया। उनका विश्वास था मनुष्य का महान उत्सव प्रगति कर रहा है। उनके मानवतावाद का पोषण आध्यात्मिकता की जड़ों में हुआ था।''[40]

रवीन्द्रनाथ का हृदय साधारण अनजान मनुष्य के प्रति भी असीम सहानुभूति, प्रीति और करुणा का भाव ही उनकी मानवीय चेतना है। जिसका प्रकाश उनके संपूर्ण साहित्य विशेषकर रहस्यवादी या आध्यात्मिक प्रभाव से प्रभावित साहित्य में दिखाई पड़ता है। 'गीतांजलि' के गीत संख्या 120 में कवि रवीन्द्र को वह असीम अपने अंदर ही अनुभूत होता है। अर्थात् रवीन्द्रनात मानव के बीच ही उस असीम को स्वीकार करते हैं। उदाहरण दृष्टव्य हैं –

''तुम्हारे आलोक में छाया नहीं है,

मुझमें ही वह काया प्राप्त करता है

मेरे अश्रु-जल से वह

सुंदर विधुर हो जाता है।

मेरे मध्य तुम्हारी शोभा

इतनी सुमधुर है।''[41]

रवीन्द्र साहित्य के समीक्षक डॉ0 शिवनाथ ने कवि रवीन्द्र के मानवीय प्रेम के संदर्भ में कहा है, ''रवीन्द्रनाथ ने ऐसे उपेक्षित मानव को अपने पूरे साहित्य में सम्पूर्ण हमदर्दी के साथ याद किया है, उनके साहित्य के लिए ये

लोग अनजान नहीं है, देश, समाज के लिए इनके महत्व को उन्होंने छोटा नहीं समझा है, उस समाज के प्रति ऐसी निगाह से देखने के कारण ऐसे सभ्य समाज को उन्होंने धिक्कारा भी कम नहीं है। सामान्य आदमी के लिए किए गए दुर्व्यवहार को लंबा-चौड़ा उल्लेख रवीन्द्रनाथ ने किया है।''[42] इन कथन के संदर्भ में गीतांजलि काव्य की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है। मनुष्य को स्पर्श से दूर रखकर, घृणा की है, तुमने मनुष्य के प्राणों के देवता का अपमान किया है उनका, अब उनके समान होना होगा। गीतांजलि काव्य संग्रह के गीत संख्या 108 में से उदाहरण दृष्टव्य हैं -

''मनुष्य के स्पर्श को प्रतिदिन दूर हटाते हुए

तुमने मनुष्य के प्राणों के देवता से घृणा की है।

विधाता के भयंकर रोष से अकाल के द्वार पर बैठ

उन सबके साथ बाँट कर तुम्हें अन्न-जल खाना होगा

अपमान में उन सबके समान होना होगा।''[43]

रवीन्द्रनाथ आध्यात्मवादी थे, उनमें रहस्यवाद का प्रभाव रहा है। उन्होंने 'गीतांजलि' की कविताओं में ईश्वर और मानव दो तत्वों के रूप में कल्पना की है। मानव एक 'ससीम' सत्ता है जिसके अंदर असीम या दिव्य शक्ति की ज्योति निरंतर दैदीप्यमान है। वे मानव और ईश्वर के बीच अद्वैत भाव को स्वीकारते हैं। इसलिए वे दलित, शोषित जन के प्रति करुणा भाव को अपनाते हैं। रवीन्द्रनाथ की भावनात्मक रहस्यवाद पर श्री चैतन्य संप्रदाय, संतों की करुणा और बंगाल के बाउलों का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगत होता है।

कवि रवीन्द्र मानव के सुख-दुःख की जीवंत संवेदना में कवि जीवित रहने की आकांक्षा रखते और सामान्य मनुष्य के बीच जीवन यापन करते हुए

नवीनता की सृष्टि करना चाहते हैं। 'कड़ि ओ कोमल' काव्य संग्रह के 'प्राण' शीर्षक कविता में यह भाव स्पष्ट है –

''मरिते चाहि ना आमि सून्दर भुवने

मानवेर माझे आमि वॉंचिवारे चाई।

X X X

मानवे सुखे-दुःखे गाँथिया संगीत

यदि गो रचिते पारि अमर-आलय।

ता यदि ना पारि तबे बॉंधि जतो काल

तोमादेरी माझखाने लभि जेन ठॉंई।''[44]

अर्थात कवि रवीन्द्र मानव के अन्दर असीम सत्ता की अनुभूति कर, मानव के बीच ही उनके सुख-दुःख में भागीदार बनना चाहता है। वे मानव सेवा अर्थात ब्रह्म की सेवा को भी इसी संदर्भ में स्वीकृति देते हैं। अतः विवशता दुःख, वेदना जैसे भावों के प्रति उनकी अपार सहानुभूति को नकारा नहीं जा सकता है। रवीन्द्रनाथ ने भले ही अभिजात्य वर्ग में जन्म लिया हो लेकिन असहाय अछूत और निम्नवर्ग की व्यथा का उन्हें एहसास था। यह मानवीय भावनाओं की अनंत सीमा है, जो संवेदना के स्तर पर उतरकर उनके रहस्यात्म कविताओं के द्वारा समाज के जन-जन तक पहुँचा हैं।

निष्कर्ष – हिन्दी की महादेवी बांग्ला के रवीन्द्रनाथ ठाकुर में भाषाई, क्षेत्रीय और उम्र में अंतर होने के बावजुद दोनों के भावात्मक रहस्यवादी कविताओं का मूल उत्स एक है। महादेवी जहाँ बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद तथा मध्यकालीन संतों की रहस्य साधना से प्रभावित रहीं हैं वहीं रवीन्द्रनाथ पर मध्यकालीन संतों, सूफ़ियों और बंगाल के बाउल संप्रदाय का प्रभाव है। महादेवी और रवीन्द्रनाथ दोनों ही भावात्मक स्तर पर अलौकिक प्रियतम या ब्रह्म रूपी विराट स्वरूप के साथ अद्वैतभाव को अनुभव करते हैं। महादेवी और रवीन्द्र दोनों ही आधुनिक भारतीय रहस्य परंपरा के श्रेष्ठ प्रतिनिधि हैं। विरह और मिलन की

अनुभूतियाँ दोनों में न्यूनाधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। जहाँ रवीन्द्रनाथ में मिलन और विरह दोनों ही अनुभूतियाँ प्रचुर मात्र में प्रबल वेग के साथ उपलब्ध है वही महादेवी विरह की साधिका है उनके भावात्मक रहस्यवाद में विरह की प्रधानता विभिन्न मानवीय धरातल पर हुई हैं। महादेवी की भावना पर बौद्धिकता और संयमित भावना का प्रभाव अधिक है, वहीं रवीन्द्रनाथ के रहस्यवादी कविताओं में भावावेग अधिक प्रबल हैं। अतः आधुनिक युग के हिन्दी और बांग्ला में रहस्यानुभूति की व्यापकता, गम्भीरता तथा उसकी अभिव्यक्ति की कलात्मकता की दृष्टि से महादेवी और रवीन्द्रनाथ अनुपम एवं अतुल्य हैं।

सन्दर्भ - ग्रन्थ - सूची

1. चिंतामणि, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य सरोवर, आगरा, 1992, पृ - 3
2. रवीन्द्रनाथ की कविताएँ, अनुवादक - हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारी सिंह 'दिनकर', हंस कुमार तिवारी, भवानी प्रसाद मिश्र, प्रकाशक - साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण - 1982, पृ - 313
3. महादेवी वर्मा : काव्य कला और जीवन दर्शन, शचीरानी गुर्टू, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 1963, पृ - 172
4. महादेवी वर्मा : स्मृति - ग्रन्थ, प्रधान संपादक - डॉ. डी. पी. बरनवाल, श्याम ब्रदर्स प्रकाशन, दार्जिलिंग, प्रथम प्रकाशन - 2014, पृ - 109
5. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), संपादक - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ - 39
6. वही, पृ - 359
7. वही, पृ - 173
8. वही, पृ - 420
9. वही, पृ - 35
10. महादेवी, संपादक - परमानंद श्रीवास्तव, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृ - 1

11. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), संपादक - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ - 420

12. वही, पृ - 233

13. वही, पृ - 420

14. वही, पृ - 109

15. भागवतगीता, टीकाकार - जयदयाल गोयन्दका, प्रकाशक - गोविन्दभवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, पैंतालीसवां संस्करण - सं० 2053, पृ - 81

16. महादेवी साहित्य (खण्ड -1), संपादक - निर्मला जैन, पृ - 267

17. वही, पृ - 62

18. वही, पृ - 416

19. महादेवी साहित्य (खण्ड - 4), संपादक - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ - 15

20. महादेवी साहित्य (खण्ड - 1), संपादक - निर्मला जैन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, तृतीय संस्करण - 2007, पृ - 379

21. वही, पृ - 273

22. वही, पृ - 35

23. वही, पृ - 428

24. वही, पृ - 280

25. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण - 2008, पृ - 365

26. महादेवी साहित्य (खण्ड -1), संपादक - निर्मला जैन, पृ - 273

27. Life mind and art of Tulsi and Tagore : A comparative perspective, studies on Rabindranath Tagore, Hari Om Prasad, Edited By Mohit K. Ray, New Delhi, Atlantic Publishers (Vol.-II), 2004, Page-84

28. चिन्तामणि (पहला भाग), आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य सरोवर, आगरा, 1992, पृ0-96

29. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-2, प्रधान सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, पृ0-171

30. संचयिता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शुभम प्रकाशन, कोलकाता, तृतीय संस्करण-2011, पृ0-184

31. वही, पृ0-185

32. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-48, प्र0 सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-109

33. रवीन्द्र रचनावली, खण्ड-6, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथन विभाग, कोलकाता, बंगाब्द-1421, पृ0-67

34. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-1, प्रधान सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2014, पृ0-136

35. रवीन्द्र रचनावली, खण्ड-6, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, विश्वभारती ग्रंथन विभाग, कोलकाता, बंगाब्द-1421, पृ0-14

36. वही, पृ0-181

37. वही, पृ0-222

38. वही, पृ0-153

39. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, प्र0 सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-109

40. आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, लक्ष्मीनारायाण अग्रवाल, आगरा, 1994, पृ0-87

41. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-2, प्र0 सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-151

42. रवीन्द्र साहित्य का समीक्षा, शिवनाथ, हिन्दी समिति प्रकाशन, लखनऊ, 1976, पृ0-300-301

43. रवीन्द्रनाथ टैगोर रचनावली, खण्ड-2, प्र0 सं0-इन्द्रनाथ चौधुरी, पृ0-148

44. संचयिता, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शुभम प्रकाशन, कोलकाता, तृतीय संस्करण – 2011, पृ0-22-23